Educational Trend (A Journal of RIE, NCERT, Ajmer), Volume 3, Issue 2, July 2022
ISSN: 2583-6269

सूचना—तकनीक, बाजार एवं बहुभाषिकता का संघर्ष

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी
ईमेल: arimardankt@gmail-com, **दूरभाष:** 8005459243

सारांश- *अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के बाद सूचना—प्रौद्योगिकी ने प्रत्यक्षतरू व्यापक समाज को प्रभावित किया है, वहीं दूसरी तरफ इसकी शिकार वैश्विक बहुभाषिकता रही है। आम जन मानस में भाषा की महत्ता को कभी उस तरह से स्वीकार नहीं किया जाता है, जैसे किसी राज्य—समाज के दूसरे संसाधन होते हैं। क्योंकि कम से कम प्रथम भाषा के अर्जन में मनुष्य को कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ता है और एक बच्चे के शारीरिक—मानसिक विकास के साथ भाषिक क्षमता का विकास होता है। जिस परिवेश में एक बच्चा भाषा सीखता है, उस परिवेश में आज इंटरनेट समर्थ मोबाइल का वर्चस्व तेजी से बढ़ रहा है। ध्यान रहे कि मोबाईल की अपनी भाषा है और उसका वर्चस्व भी। इस प्रकार देश के बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक समाजों की आगामी पीढ़ी के साथ उनकी स्थानीय भाषा रहेगी, इस पर फिलहाल तो संशय है। फिर इसका दूसरा दौर वह आएगा, जबकि आज क्लाउड—कंप्यूटिंग के लिए आवश्यक डाटा और सूचना की भाषा अँग्रेजी होगी, आने वाले समय में उस डाटा के प्रभाव मात्र के कारण स्थानीय भाषाओं का संघर्ष और बढ़ जाएगा, क्योंकि डाटाध्सूचना आधारित बाजार में अँग्रेजी वर्चस्व नए सिरे से स्थापित हो रहा है, जो अँग्रेजी के तो समर्थन में है, लेकिन भारतीय बहुभाषिकता के विरुद्ध है।*

यहाँ वैश्विक और स्थानीय प्लेटफार्मों पर सूचना—प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भाषाओं के संकट पर चर्चा की गई है, जिससे जागरूकता बढ़े। इसमें अंग्रेजी, सूचना—प्रौद्योगीकीय साधन और बाजार के गठबंधन पर ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप दुनिया में भाषाओं पर खतरे होंगे।

कुंजी शब्दः भाषा—संरक्षण, सूचना—प्रौद्योगिकी, बहुभाषिकता, अर्थव्यवस्था

परिचय

इंटरनेट वैश्वीकरण का सबसे उपयोगी वाहन है और यह पिछले दो दशकों के अपने आरंभिक काल में ही बहुभाषी एवं बहु—नृजातीय दुनिया से तेजी से जुड़ा है। यूनेस्को (2019) ने अनुमान लगाया है कि दुनिया भर में 6700 भाषाओं का उपयोग किया जा रहा है, जबकि इंटरनेट और इसके उपस्थिति और परिवेश के अनेक साधनों की मातृभाषा अंग्रेजी है। इसलिए, इंटरनेट के वर्तमान एवं आगामी विस्तार में अंग्रेजी का वर्चस्व एक कठोर वास्तविकता है। मोबाइल के माध्यम से इंटरनेट और आम लोगों के मिलन ने विभिन्न उपयोगी एप्प के माध्यम से समाजों को गहराई से प्रभावित करना शुरू कर दिया है। दुनिया के मुख्य धारा के समाजों में भी मानव—मशीन अंतरापृष्ठ में एकभाषी तकनीक बनाम बहुभाषी समाज होता है। ध्यान रहे कि कोई सत्ता भाषा को अपने अनुसार ही गढ़ती है। ऐसे में स्थानीय एवं जनजातीय भाषाएँ, जो शायद ही कभी सत्तावान भाषा हों, पर अपनी भाषा और संस्कृति को छोड़कर मुख्य धारा के समाजों से जुड़ने का दबाव बढ़ रहा है, जिससे बहुभाषिकता पर सबसे ज्यादा संकट है।

वैश्विक समाज, तकनीक एवं बाजार

कासल्स (2010) ने हमे बहुत पहले चेताया था कि "एक तकनीकी क्रांति, जो सूचना प्रौद्योगिकी के इर्द–गिर्द केंद्रित है, त्वरित गति से, समाज के भौतिक आधार पर फिर से शुरू हुई। दुनिया भर की अर्थव्यवस्थाएं वैश्विक रूप से अन्योन्याश्रित बन गई हैं, अर्थव्यवस्था, राज्य और समाज के बीच संबंधों के एक नए रूप को परिवर्तनीय ज्यामिति की प्रणाली में पेश करती हैं।" "प्रायः सूचना–प्रौद्योगिकी पर केंद्रित तकनीकी क्रांति ने भौतिक साधनों युक्त समाज को अपनी गति के अनुरूप बड़े तेजी नए सिरे गढ़ना शुरू किया है। विश्व की सभी बाजारों के आपसी निर्भरता ने आज एक अस्थिर भूगोल में अर्थव्यवस्था, राज्य और समाज के आपसी संबंधों को नया रूप दिया है।" इस परिवर्तनशीलता ने भाषाई परिदृश्य को भी नया रूप दिया है। इसलिए अल्पसंख्यक भाषाई समुदाय अपनी खुद की भाषाओं, संस्कृतियों और पारंपरिक प्रथाओं से दूर हो रहे हैं और शिक्षा, रोजगार और तकनीकी उपकरणों के उपयोग के लिए बड़ी भाषाओं की ओर स्थानांतरित हो रहे हैं। इंटरनेट अब कंप्यूटर का मोहताज नहीं रहा, बल्कि तुलनात्मक रूप से सस्ते मोबाइलों के माध्यम से लोगों के हाथ और उनके औपचारिक और अनौपचारिक दिनचर्या में शामिल हो रहा है। 'संयुक्त राष्ट्र संघ' (2019) के एक अध्ययन में कहा गया है कि वैश्विक आबादी के पचास प्रतिशत लोग इंटरनेट से जुड़ चुके हैं। इससे पहले संयुक्त राष्ट्र संघ के अनेक अध्ययनों के केंद्र में प्रायरू विश्व की शांति, अर्थव्यवस्था, गरीबी, मानवाधिकार, कला एवं संस्कृति आदि हुआ करते थे, ऐसे में इसको इंटरनेट से जुड़ी उपलब्धि का संज्ञान लेते हुए देखना महत्त्वपूर्ण है। दरअसल संघ में इसकी शुरुआत इसी वर्ष हुई है, जिसमें इसके वर्तमान महासचिव एंटोनियो गुटेर्स की पहल पर एक डिजिटल पैनल का गठन हुआ है। इस कवायद के पीछे विचार यह है कि "आधुनिक तकनीकी युद्ध स्तर पर अर्थव्यवस्था और समाज को बदल रही है और इस बदलाव की तेजी अभूतपूर्व है।" ऐसे में उचित ही है कि 'संयुक्त राष्ट्र संघ' विश्व–समाज पर तकनीक के प्रभावों या दुष्प्रभावों का अध्ययन करे और तद्नुरूप समाज को जागरूक करे। क्योंकि तकनीक अपने विभिन्न फलकों के माध्यम से आज जीवन–प्रक्रिया के विस्तार के एक ऐसे साधन के रूप में परिवर्तित होती जा रही है, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। इसके समुचित और जागरूक उपयोग से समाज के विभिन्न बदलावों में एक बेहतर हस्तक्षेप हो सकता है और बहुत हद तक हो भी रहा है। यदि पिछले बीस–पच्चीस वर्षों के सामाजिक बदलावों को विश्लेषित किया जाय, तो निरूसंदेह एक समाज के रूप में हम अपनी जड़भूत बुराइयों से कुछ कदम आगे बढ़े हैं, जिससे एक बेहतर भविष्य की राह दिखती है। आज तकनीक के हस्तक्षेप से भ्रष्टाचार के कम होने की उम्मीद बंधती है और सार्वजनिक जीवन में पारदर्शिता का दबाव बढ़ा है। एक तरफ समाज के उंच–नीच के भेद–भाव से परे सोशल मीडिया पर सबको अपनी बात रखने का अवसर मिलता है, तो दूसरे मीडिया और संचार के माध्यमों में संस्थागत वर्चस्व टूट रहा है। हालिया तकनीक समर्थित 'मीटू' अभियान ने न सिर्फ हमारे समाज के स्याह पक्ष को उजागर किया है, बल्कि यह भी नए शिरे से स्थापित किया है कि समाज के विभिन्न प्रतिष्ठित व्यक्तित्वों में भी कितने छिद्र बचे रहते हैं। उनमें जेंडरगत कुंठा भी एक है। दूसरी तरफ सीसीटीवी और मोबाइल के कैमरों से समाज में व्याप्त झूठ की प्रवृत्ति, चोरी एवं छेड़खानी आदि समस्याओं पर चोट करना शुरू कर दिया है। सैकड़ों उदाहरण मिल जाएंगे, जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि चोरी महज अभावों की मुहताज नहीं होती, बल्कि एक प्रवृत्ति होती है, जो सामाजिक या आर्थिक पृष्ठभूमियों से परे व्यक्ति की आदत में शामिल हो जाती है। देखा जाय तो तकनीक ने जिस तरह समाज के गुणों को सामने लाई है, उसी तरह दुर्गुणों पर भी प्रकाश डाला है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण होंगें, जिसमें सार्वजनिक स्थल पर होने वाली मार–पीट, दंगा, आगजनी आदि की घटनाओं में दोषी की पहचान खुद अपराधी या उसके समूह के लोगों द्वारा मोबाइल से लिए गए वीडियो से होती है, ऐसे में पत्रकार होने के पारंपरिक नियामक टूट रहे हैं और पत्रकारीय परिधि

का विस्तार हो रहा है। इस पूरे प्रकरण में राजनीति और मीडिया के गठजोड़ से स्थापित अनेक 'सत्य' की सफेदी भी धूमिल हो रही है और नए सत्य स्थापित हो रहे हैं।

इन सबके बावजूद तकनीक की अपनी सीमाएं हैं और जिस रूप में वह हमारे सामने आ रही है, वह कई मायनों में खतरनाक भी है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि तकनीक का विकास ना हो, बल्कि यह है कि तकनीक की उपयोगिता हमारे जीवन में किस स्तर तक रहे और इसमें किस सीमा तक संतुलन होना चाहिए, इस पर भी विचार इसी पीढ़ी को करना चाहिए। क्या तकनीक से हमारे जीवन की आधारभूत जरूरतें पूरी हो सकती हैं? न तो तकनीक से भूख को मिटाया जा सकता और न ही उसे पहना जा सकता है। रोटी, कपड़ा एवं मकान जैसी आवश्यकताओं को पूरा करने में हो सकता है कि एक स्तर पर तकनीक सहयोगी हो, लेकिन महज तकनीक से मानव–समाज की सभी जरूरतें पूरी नहीं की जा सकती हैं। एक समाज के रूप में हमें सबसे पहले उन आवश्यकताओं को देखना होगा, जो मनुष्य को मनुष्य बने रहने की चिंताओं में शामिल हो। तकनीक दरअसल मनुष्य के मशीनीकरण की एक प्रक्रिया है और यह मशीनीकरण किस स्तर तक व्यक्ति के जीवन में शामिल हो इस पर भी विचार होना चाहिए।

असल में मुद्दा यह भी है कि आज सूचना–तकनीक का स्रोत क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं कि व्यक्तिगत सुविधा और स्वतंत्रता के नाम पर हमारा पूरा लोकतंत्र ही बंधक बन जाए। यह एक डरावना तथ्य है कि भूमंडलीकरण के बाद खुली अर्थव्यवस्था में जिस चीज ने सबसे ज्यादा विकास किया या यूं कहें कि सबसे ज्यादा पूंजी बटोरी वह तकनीक ही है। यदि हम पिछले 10 साल के डाटा के आधार पर विश्लेषण करें, तो इस निष्कर्ष पर आसानी से पहुंचा जा सकता है कि दुनिया के पूंजीपतियों की जमात में सर्वाधिक व्यक्ति या कंपनियां हैं, वह हैं जिनका आधार सिर्फ सूचना तकनीक से जुड़े हुए उद्यम हैं। हम यह भी देखते हैं कि ऑपरेटिंग सिस्टम से लेकर इंटरनेट प्लेटफार्म तक की गला काट प्रतिस्पर्धा में सब एक दूसरे को निगल लेने की होड़ में शामिल हैं और विकासशील देशों से इस दिशा में होने वाले प्रयास इस संघर्ष में बहुत दूर तक प्रतिरोध नहीं कर पा रहे हैं। ऐसे में 2018 फोर्ब्स की दुनिया के पूँजीपतियों की सूची में हालिया नाम जो शीर्ष पर है, वह अमेजन का है, जो न तो अपने आप में कोई उत्पाद हैं और न ही स्वयं में संपूर्ण। बल्कि उसका काम उत्पादों और उपभोक्ताओं के बीच मध्यस्थता का है, जिसे हम अपनी भाषा में 'दलाली' कहते हैं। ऐसे में यह याद दिलाने की आवश्यकता है कि अमेजन का अचानक शीर्ष पर पहुंचने में सबसे बड़ा आधार उसका इंटरनेट पर उपलब्ध होना है। इंटरनेट आधारित इन रातों–रात विकास कर रही कंपनियों में ऐसी कंपनियां भी हैं, जो लोकतांत्रिक मूल्यों के संरक्षण या प्रश्रय देने के लुभावने आवरण के साथ विकास कर रही हैं। हाल में फेसबुक पर भी दुनिया के अनेक देशों में चुनावी प्रक्रिया में छेड़छाड़ और परिणामों में प्रभाव डालने का आरोप लगा है, तो यह इसके लोकतांत्रिक होने के भ्रम को तोड़ता है। इस क्रम में यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जब दुनिया का पूरा खेल डाटा–संग्रहण और सूचना–विश्लेषण पर केंद्रित होता जा रहा है, तो ऐसे सोशल मीडिया से जुड़ी कंपनियां हमारे डाटा को कब कहां कैसे उपयोग में ला रही हैं, इसे एक आम उपभोक्ता समझ पाने की स्थिति में नहीं होता है। आज यदि सोशल मीडिया से जुड़ी कंपनियां अपने लोकतांत्रिक विस्तार के आधार पर विज्ञापन का खेल व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वायत्तता को दरकिनार कर खेल रहीं हैं, वहीं कल ये हमारी सरकारों से इन्हीं डाटा के आधार पर मोल–भाव की स्थिति में होंगीं और पूंजी की व्यापकता के आधार पर कोई सरकार उनकी इन मांगों की सहज अवहेलना नहीं कर सकती। यह खतरा भारत जैसे देश में और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि यहां न तो आम समाज में उस स्तर की जागरूकता है और न ही सरकारों में इनसे बच पाने की कोई दृढ़ कार्य–योजना। कहीं ऐसा न हो कि जब तक हम चेतें तब तक सब कुछ हाथ से निकल चुका हो। इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि

गूगल और फेसबुक जैसी कंपनियाँ हमारे डाटा और गतिविधियों के आधार पर अपना शोध–संसाधन और पूंजी बना रही हैं और इसका उचित लाभ देश की अर्थव्यवस्था को भी नहीं मिल रहा है। इसके साथ ही आज सूचना–तकनीक के गजटों ने समाज पर तेजी से प्रभाव डालना शुरू कर दिया है, जिसका प्रभाव सामाजिक, मानसिक और आर्थिक स्तरों पर भी पड़ रहा है। जिसका एक पक्ष ई–कचरा की अधिकता के कुप्रभाव भी है।

समाज में जितना तकनीक की आवश्यकता है, उससे अधिक उसके साथ मनुष्य का संतुलन भी होना जरूरी है। आज समाज की आवश्यकता और उनकी पूर्ति के मध्य बाजार जिस रूप में शामिल है, उस पर समाज के साथ सरकारों का भी प्रभावी नियंत्रण होना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि व्यक्तिगत लोकतांत्रिक मूल्यों के वर्चुअल अनुभूति के क्रम में हमारा मूल लोकतंत्र ही कहीं किसी अमेरिकी सर्वर में बंधक न बनकर रह जाए। गौरतलब है कि हमारे दैनिक जीवन की मूल आवश्यकता अनाज का उत्पादक किसान का जीवन स्तर तो नहीं बदलता, लेकिन द्वितीयक आवश्यकता इंटरनेट और इसकी मध्यस्थता के व्यापार में शामिल कंपनियाँ रातों–रात वैश्विक धनिकों की प्रतिस्पर्धा में शामिल हो जाती हैं।

भाषाई संघर्ष

आज पश्चिम संरक्षित वैश्विक एकरूपता के समक्ष स्थानीय विविधताएँ लगातार संकुचित हो रही हैं। भौतिक विकास की बुनियाद में एकरूपता एक ऐसे मूल्य के रूप में सामने आती है, जो सबको स्वयं के अनुरूप ढाल देना चाहती है। जैव–पारिस्थितिकी का प्रारूप लगातार संकुचित होता जा रहा है। इसका प्रभाव जीवन को गहनता से प्रभावित करता जा रहा है, जिसमें विकल्पों के बाहुल्य का संघर्ष जारी है। इसी क्रम में समाज की भाषाई–सांस्कृतिक विरासत के रूप में मौजूद खुरदुरापन लगातार समतल होता जा रहा है। जल, जंगल एवं जमीन के बदले भौतिकता ने जिस तेजी से अपना पाँव फैलाया है, उसमें हमारे सामने सीमेंट वाला विकास ही दिख रहा है, जिसमें कितनी अस्मिताएँ ध्वस्त हो रही हैं, उनकी गणना करने की चिंता से भी 'विकसित' या 'सभ्य' समाज के लोग दूर होते जा रहे हैं। इन परिस्थितियों का सीधा प्रभाव भाषा पर पड़ना स्वाभाविक ही है। इसमें न सिर्फ छोटी जनसंख्या वाली भाषाओं पर संकट बढ़ता जा रहा है, बल्कि प्रायरू बहुसंख्यक भाषाओं की मूल एवं जातीय संस्कृति से भींगी हुई शब्दावली भी समाप्त हो रही है। स्थानीयता बनाम वैश्विकता के संघर्ष में विजय स्वाभाविक रूप से वृहतर या शक्तिशाली समूहों के साथ है। तमाम ऐतिहासिक संदर्भों में न पड़ते हुए भी इतना तो जोड़ना ही चाहिए कि आज इस वैश्विक विजय का सबसे अधिक जश्न अँग्रेजी मना रही है। इसलिए विश्व के अग्रणी अँग्रेजी भाषी देशों को वैश्विक अल्पसंख्यक भाषा की चिंता भला क्यों होने लगी। आज उदारीकरण में यदि यह तथ्य पूँजी के लिए उचित है कि बड़ा लगातार बड़ा हो रहा है और छोटा या तो छोटा बने रहने के लिए अभिशप्त है या समर्पण करने के लिए बाध्य तो यह स्थिति भाषा के संदर्भ में भी यथावत् लागू होती है। जिसमें फिलहाल अँग्रेजी सबसे शक्तिशाली भाषा है, क्योंकि यह मूल भाषी से अधिक द्वितीय भाषा के रूप में व्यवहृत है। दूसरी तरफ भूमंडलीकरण के संवाहकों जैसे सूचना–क्रांति, अंतरराष्ट्रीय निवेश, पारदेशिक रोजगार जैसे अभिकरणों ने कभी स्थानीय भाषा या संस्कृति की चिंता नहीं की। इसलिए बहुभाषिकता लगातार संकुचित हो रही है। निश्चित रूप से भारत भी इससे अछूता नहीं रहेगा। यह देश जो अपनी बहुस्तरीय विविधताओं के लिए विख्यात है, वहाँ भाषाएँ एवं संस्कृतियाँ पारिस्थितिकी की अनिवार्य इकाई हैं, धरोहर हैं, विरासत हैं, जीवन हैं और उम्मीद भी। प्रायरू स्थानीय भाषाओं में भाषिक सामर्थ्य किसी मानक या कथित विकसित भाषा से अधिक होता है, जाहिर है कि देश की बहुरंगी संस्कृति एव भाषाओं के सामर्थ्य पर कभी किसी को भ्रम

नहीं होना चाहिए। लेकिन यहाँ चुनौती भाषिक से अधिक आर्थिक सामर्थ्य की है। जिसके सामने सब कुछ असहाय दिख रहा है।

जैसा कि स्पष्ट है, आज भाषाई संदर्भों में भी स्थिति वही है, जिसमें 'वृहत' लगातार वृहत्तर होता जा रहा है और 'लघु' के सामने लघुतर होने के अतिरिक्त कोई वैकल्पिक रास्ता सहज नहीं प्रतीत हो रहा है। प्रभु वर्ग ने हमेशा अपने अधीनस्थ को दबाया है, इसलिए भूमंडलीकरण के रूप में सृजित सत्ता से रहम की उम्मीद करना उचित नहीं होगा, क्योंकि इसने समय के साथ अपनी विकरालता बढ़ाई है और इस विकरालता का एक चेहरा शोषक का ही है।

भारतीय भाषाई संघर्ष एवं भविष्य की दिशाएँ

आज जो विश्व का आर्थिक ढाँचा बन गया है, उसमें उदारीकरण का विकल्प क्या है? तब गांधी एक ऐसे समाधान के रूप में दिखते हैं, जिसमें वे स्थानीय एवं कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने की वकालत करते थे, इसके साथ उनके भाषाई प्रयोग जिसमें वे हिंदुस्तानी और मातृभाषा को प्रश्रय देने की बात करते थे। इसके साथ शिक्षा का प्रसंग एक बड़ी चुनौती है, जिसमें रवीद्रनाथ टैगोर की शिक्षा–पद्धति एक समाधान प्रस्तुत करती है। ऐसा नहीं है कि आज महात्मा गांधी या टैगोर नए हैं, बल्कि समस्या यह रही कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र–निर्माण में राष्ट्रपिता की उपेक्षा हुई और हमने आँख मूँद कर पश्चिमी पैमानों को अपनाया। इसी लिए राष्ट्रवाद की भी एक पश्चिमी अवधारणा हमारे सामने आती है, जिसमें हम एक देश, एक भाषा, एक धर्म आदि की कल्पना करने लगते हैं। जबकि भाषाओं की विविधता भारतीय राष्ट्र की संपत्ति है और भारत देश अपनी विविधता के लिए ही जाना जाता है।

निष्कर्ष

भाषा को न तो सन्दूक में रखकर सुरक्षित किया जा सकता है और न ही सिर्फ व्याकरण की उपलब्धता से किसी दूसरी भाषा को सीखने की प्रेरणा मिलती है। आज समग्रता में रोजगार से परे शिक्षा को नहीं देखा जा सकता। आवश्यक है कि स्थानीय स्तर पर रोजगार, औद्योगीकरण और शिक्षा को बढ़ावा मिले। भाषा का बचना या बढ़ना तत्समाज के साथ विश्व–व्यापार, अंधाधुंध शहरीकरण, पलायन, रोजगार, शिक्षा, नीति–निर्माण आदि पक्षों पर निर्भर करता है। व्यापक समाज में मातृभाषा की तुलना में सूचना–तकनीक की उपयोगिता अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है। समाज की जीवन शैली और आदतें मोबाइल और उसके अनुप्रयोगों के लिए उपयुक्त होती जा रही हैं और इंटरनेट की माध्यम भाषा वह मुद्दा नहीं बन पा रही है, जितनी आवश्यक है। इसलिए अंग्रेजी इंटरनेट के साथ और अधिक शक्तिशाली होती जा रही है और इससे समर्थित वैश्विक बाजार में छोटी भाषाओं का संकट दिनों–दिन कठिन होता जा रहा है। क्रिस्टल (2000) ने उम्मीद जताई है कि ष्अल्पसंख्यक भाषा–संस्कृति के लिए इंटरनेट पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराना पूरी तरह से संभव है.।" इसलिए भारतीय समाज को भी अपनी–अपनी भाषाओं के माध्यम से इंटरनेट तक पहुँचना चाहिए।

संदर्भिका

Castells, Manuel (2010). End of Millennium, The Information Age: Economy, Society and Culture; Blackwell, Oxford, UK.

Crystal, David (2000) Language Death, Cambridge University Press, Cambridge.

Edwards, J. 1985. Language, Society and Identity. Oxford: Basil Blackwell.

Fishman, Joshua A. (1991) Reversing Language Shift: Theoretical and Empirical Foundations of Assistance to Threatened Languages; Multilingual Matters, Philadelphia.

त्रिपाठी, अरिमर्दन कुमार (2012) भाषा के समकालीन संदर्भय साहित्य संगम, इलाहाबाद।

त्रिपाठी, अरिमर्दन कुमार (2019) भाषा एवं डिजिटल लोकतंत्रय टुडे एंड टुमारो प्रिंटर एवं पब्लिशर, नई दिल्ली।

यूनेस्को (2019) https://en-unesco-org and https://en-iyil2019-org/

सिंह, शैलेंद्र कुमार एवं त्रिपाठी, अरिमर्दन कुमार (2015) भाषा–पारिस्थितिकी रू भारतीय एवं वैश्विक संदर्भय टुडे एंड टुमारो प्रिंटर एवं पब्लिशर, नई दिल्ली।